**ओ३म्**

**‘आर्यसमाज की स्थापना के समय ऋषि दयानन्द द्वारा व्यक्त की गई आशंका’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 महर्षि दयानन्द ने 10 अप्रैल, सन् 1875 के दिन मुम्बई के गिरगांव मोहल्ले में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की थी। वर्तमान में यह आर्यसमाज काकाड़वाडी के नाम से प्रसिद्ध है। हमारा सौभाग्य है कि वर्ष, 1992 में एक बार हमें इस आर्यसमाज में जाने व वहां प्रातःकालीन यज्ञ में यजमान के आसन पर बैठने का अवसर मिला। आर्यसमाज अन्य धार्मिक संस्थाओं की तरह कोई संस्था या प्रचलित मतों की भांति कोई नवीन मत नहीं था। यह एक धार्मिक व सामाजिक आन्दोलन था जिसका उद्देश्य महाभारत काल के बाद वैदिक धर्म में आई अशुद्धियों, अज्ञान, अन्धविश्वासों व कुरीतियों आदि का संशोधन कर, वेद के आदर्श **‘कृण्वन्तो विश्वमार्यम्’** वा सत्य वैदिक मत का प्रचार कर उसको देश देशान्तर में प्रतिष्ठित करना था। यह सुविदित है कि जब महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज की स्थापना की, उस समय देश अंग्रेजों का गुलाम था। महाभारत काल के बाद लगभग 5,000 वर्षों से लोग अज्ञान, अन्धविश्वासों सहित गुलामी का जीवन बिताने के कारण वह कुरीतियों के एक प्रकार से अभ्यस्त हो गये थे। बहुत से लोगों को महर्षि दयानन्द के सुधार व असत्य मतों के खण्डन के पीछे मनुष्य व देशहित की छिपी भावना के दर्शन नही होते थे। उस समय की अवस्था के विषय में यह कह सकते हैं कि अधिकांश देशवासियों के ज्ञान चक्षु अति मन्द दृष्टि के समान हो गये थे जिसमें उनको अपना स्पष्ट हित भी दिखाई देना बन्द हो गया था और वह एक प्रकार से विनाशकारी मार्ग, अन्धविश्वास व कुरीतियों का मार्ग, पर चल रहे थे। उनमें से अधिकांश अपनी अज्ञानता व कुछ अपने स्वार्थों को बनायें व बचायें रखने के लिए उनका विरोध करते थे। ऋषि दयानन्द के विचारों व मान्यताओं में स्वदेश भक्ति वा स्वदेश प्रेम की मात्रा भी विशेष उन्नत व प्रखर थी। इस कारण अंग्रेज भी आन्तरिक व गुप्त रूप से उनके विरोधी व शत्रु थे। ऐसी परिस्थितियों में ऋषि दयानन्द ने व्यक्ति, समाज व देश के सुधार के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। इस स्थापना के समय ही महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज से जुड़़ने वाले लोगों को एक चेतावनी भी दी थी जिसे हम आज पाठकों को ज्ञानार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

 महर्षि दयानन्द द्वारा इस अवसर पर कहे गये शब्द लिखित रूप में उपलब्ध हैं। वह स्थापना के समय उपस्थित सभी लोगों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि **‘आप यदि समाज (बनाकर इस) से (मिलकर सामूहिक) पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हों, (तो) समाज कर लो (बना लो), इस में मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय (अव्यवस्था) हो जाएगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हूं वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं है। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूं। इस से यदि कोई मेरी गलती आगे पाइ जाए, युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इस को भी सुधार लेना। यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जायेगा, और इसी प्रकार से बाबा वाक्यं प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मत-मतान्तर प्रचलित होके, भीतर भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके (आपस में) लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इसमें, यह (आर्यसमाज) भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित है वो भी (व) वे सब वेदों को मानते हैं, इस से वेदशास्त्ररूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी और धर्म ऐक्यता से सांसारिक और व्यवहारिक सुधारणा होगी और इससे कला कौशल्यादि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपने धर्म (के) बल से अर्थ काम और मोक्ष मिल सकता है।’**

 महर्षि धर्म संशोधक ऋषि व समाज सुधारक महामानव थे। उनसे पूर्व उत्पन्न किसी धर्म प्रवर्तक वा समाज संशोधक ने अपने विषय में ऐसे उत्तम विचार व्यक्त नहीं किये। यदि किये भी होंगे तो उनके शिष्यों द्वारा उनका रक्षण नहीं किया गया। इन विचारों को व्यक्त करने से ऋषि दयानन्द एक अपूर्व निःस्वार्थ व निष्पक्ष महात्मा तथा आदर्श धर्म संशोधक समाज सुधारक ऋषि सिद्ध होते हैं। ऋषि दयानन्द ने जो आशंका व्यक्त की थी उसका प्रभाव हम आर्यसमाज के संगठन में देख सकते हैं। आर्यसमाज का संगठन गुटबाजी व अयोग्य लोगों के पदों पर प्रतिष्ठित होने से त्रस्त है। सभाओं में भी झगड़े देखने को मिलते हैं। इन्हें समाप्त करने के झुट पुट प्रयत्न भी हाते हैं परन्तु सफलता नहीं मिलती। इसका मूल कारण अविद्या है जिसे दूर नही किया जा सक रहा है। यही कारण है कि आर्यसमाज के सामने मनुष्य के जीवन व चरित्र के सुधार सहित जीवन निर्माण का जो महान लक्ष्य था, वह पूरा न हो सका। हम आर्यसमाज के सभी अधिकारियों व सदस्यों को ऋषि दयानन्द के उपर्युक्त विचारों पर ध्यान देने व विचार करने का अनुरोध करते हैं। यदि हमने ऋषि के सन्देश को समझ कर, अपनी अविद्या को हटाकर, उसको आचरण में ले लिया तो पूर्व की भांति आर्यसमाज सहित देश का कल्याण हो सकता है। इसी के साथ इन पंक्तियों को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘मत-पंथों की विज्ञान एवं मनुष्य स्वभाव विषयक असत्य मान्यतायें’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 भारत व विदेशों में प्रचलित सभी मत-मतान्तर आज से पांच हजार एक सौ 118 वर्ष पूर्व हुए महाभारत के विनाशकारी युद्ध के बाद अस्तित्व में आये हैं। महाभारत युद्ध के बाद न केवल भारत अपितु विदेशों में भी अविद्यान्धकार छा गया था। इस कारण सर्वत्र अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियां फैल गईं थीं। इन्हें दूर करने के लिए समय-समय पर कुछ महात्मा देश-देशान्तर में हुए और उन्होंने समाज सुधार की दृष्टि से प्रचार किया। उन्होंने अथवा उनके अनुयायियों ने उनके नाम पर मत स्थापित कर दिए और उनकी शिक्षाओं के आधार पर अपने अपने मत-पन्थ-धर्म के ग्रन्थ बना दिये। यह सर्वविदित व सर्वमान्य तथ्य है कि मनुष्य अल्पज्ञ होता है। अतः उसकी कुछ बातें सत्य व कुछ, अल्पज्ञता के कारण, असत्य भी हुआ करती हैं। महर्षि दयानन्द इस तथ्य को भली प्रकार से जानते थे इसलिए उन्होंने कहा है कि मैं सर्वज्ञ नहीं हूं। सर्वज्ञ तो केवल परमात्मा हैं। इसलिए दयानन्द जी की भी कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं जो सत्य न हो। उसके लिए उन्होंने विद्वानों को परीक्षा करने व यदि उनकी कोई मान्यता व विचार वस्तुतः असत्य पाया जाये तो उसके संशोधन का अधिकार भी उन्होंने स्वयं अपने अनुयायियों को दिया है। यह बात अन्य किसी मत में नहीं है। मतों की सत्य व असत्य मान्यताओं के अन्वेषण व परीक्षा हेतु ही ऋषि दयानन्द सत्यासत्य के खण्डन-मण्डन में प्रवृत्त हुए थे जिससे उन उन मतों में उपलब्ध सत्य को जानने के साथ उनके अनुयायी असत्य से भी परिचित हो सकें और उससे सबको परिचित कराकर सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए प्रेरित कर सके। ऐसा इसलिए क्योंकि सत्य ही एकमात्र मनुष्य जाति की उन्नति का कारण है। यदि कोई व्यक्ति अपने मत की असत्य बातांे को नहीं छोड़गा तो सृष्टि की प्रलयावस्था तक भी वह सत्य को प्राप्त न होने के कारण उन्नति नहीं कर सकता।

 एक प्रमुख मत का अध्ययन करते हुए महर्षि दयानन्द के सम्मुख उस मत के प्रवर्तक की यह मान्यता दृष्टिगोचर हुई जिसमें कहा गया है कि ईश्वर ने सूर्य व चन्द्र को फिरने वाला (घूमने वाला या गति करने वाला) किया है। इसी प्रसंग में उस मत में यह भी कहा गया है कि निश्चय मनुष्य अवश्य अन्याय और पाप करने वाला है।

 महर्षि दयानन्द ने इस साम्प्रदायिक वा पन्थीय मान्यता पर विचार कर लिखा है कि क्या चन्द्र, सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्ष का दिन रात होंवे। (यदि पृथिवी अपनी धूरी पर न घूमे तो रात्रि व दिन नहीं हांेगे और यदि सूर्य की परिक्रमा न करे तो फिर दिन, महीने व वर्ष की काल गणना भी नहीं हो सकती। पृथिवी यदि न घूमती होती तो पृथिवी व चन्द्रमा गुरुत्वाकर्षण के कारण एक दूसरे से टकरा कर कब के नष्ट भ्रष्ट हो जाते। ऋतु परिवर्तन भी पृथिवी के घूमने के कारण होता है, वह भी पृथिवी के घूमने व गति न करने से न होता।) और जो मनुष्य निश्चय (स्वभाव से) अन्याय और पाप करने वाला है तो धर्म प्रवत्र्तक का धर्म ग्रन्थ के द्वारा शिक्षा करना व्यर्थ है। क्योंकि जिनका (मनुष्यों का) स्वभाव ही पाप करने का है तो उन में पुण्यात्मता कभी न होगी (क्योंकि वस्तु का स्वभाव अपरिवर्तनीय होता है) और संसार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं। (इन दोनों प्रकार के लोगों के पाये जाने से यह ज्ञात होता है यह गुण स्वभाव के कारण नहीं अपतिु ज्ञान, शिक्षा व पूर्व जन्म के संस्कार आदि के निमित्त से व संगति आदि के कारण हैं।) इसलिये ऐसी बात (सत्य के विपरीत बात) ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती। (निभ्र्रान्त व पूर्णसत्यमय ग्रन्थ केवल वेद हैं जो ईश्वर प्रदत्त हैं।)।

 हम आशा करते हैं कि आर्य व अन्य सभी पाठक ऋषि दयानन्द के विचारों से सहमत होंगे। हम निवेदन करते हैं कि सत्य व असत्य के ज्ञान के लिए पाठक सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन करें। इसे पढ़कर और आचरण में लाकर उनका मानव जीवन सफल हो सकता है।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**